विश्व का प्रथम समभाव-समदृष्टि का स्कूल (शीघ्र खुलने जा रहा है)

''विचार ईश्वर आप नूं मान, अव विचार ईश्वर इक जान''
''शब्द है गुरु शरीर नहीं है''

सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ

सतयुग-सत्य का स्वर्ण युग तेजी से निकट आ रहा है

आओ ईश्वरीय सद्‌गुणों को अपनाएं : सच्चाई, धर्म, सन्तोष, धैर्य

समभाव समस्त प्राणियों के हृदय में प्रबल होगा

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

यह लेख The Speaking Tree में पूर्वतः दिनांक 13 जून व 27 जून को प्रकाशित संस्करण के अनुक्रम में है। इसकी प्रतिलिपि हमारी वेबसाइटः www.satyugdarshantrust.org पर भी उपलब्ध है।

सतयुग में सच्चाई

सतयुग के सजन जानते हैं कि सच वह वस्तु है जो सदा ज्यों की त्यों रहे, जिसमें किसी प्रकार का विकार या परिवर्तन न हो अर्थात् पारमार्थिक सत्ता। सत्य धन ही उन्हें सबसे प्रिय होता है और उनका सर्वस्व भी सत्य होता है। वे विवेकशील अर्थात सत्य के पारखी होते हैं इसीलिए वे संतोष-धैर्य की पोशाक पहन सदा सत्य बोलने का नियम पालन करते हुए धर्मपरायण बने रहते हैं। उन सत् वादियों के लिए सत्य धर्म पथ ही शाश्वत सत्य का मार्ग होता है। सतयुग में पुण्य और सत्य की अधिकता रहती है क्योंकि सजन सत्य को धारण कर सत्य को ही वर्त-वर्ताव में लाते हैं और सत्य से ही उनका प्यार होता है। वे सच्चाई-धर्म पर अटल बने रहकर उत्तम-पुरुष कहलाते हैं और यश को प्राप्त करते हैं। उनका बोलचाल, खान-पीन सब सच होता है और वे सत्य का ही सौदा करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि सत्यनिष्ठ बने रहकर ही उनका बेड़ा पार हो सकता है। अन्य शब्दों में झूठ रूपी अवगुण की गहराई का उन्हें बोध होता है कि इसका सहारा लेने से मंझधार में फँसने यानि अधविचकार डूबने वाली बात है इसलिए उठत-बैठत, स्वप्न-जाग्रत वे सच-सच ही उच्चारण करते हैं।

उनकी ज़बान सच, हृदय सच, दोनों नयनों से सच्चाई की विशालता झलकती है अर्थात् दृष्टि कंचन होने के कारण कोई विकार उनकी वृत्ति में प्रवेश नहीं कर पाता। इसलिए कहते हैं कि सतयुगी इंसान कदम-कदम पर विचार शब्द अनुरूप चलते हैं। ध्यान से सुनो उनकी जिह्वा स्वतन्त्र और संकल्प स्वच्छ होता है। वे केवल सच का ही प्रचार करते हैं। इसी कारण उस युग की तुलना खालस सोने के साथ करते हुए उस युग को स्वर्ण-युग कहते हैं।

यही कारण है कि उनकी यश और सुगंधि कुल संसार में फैलते हुए देवलोक को भी मात कर देती है। सत्-असत् का विचार कर व सुकर्मो को धारण कर वे अपने फर्ज़-अदा को सच्चाई-धर्म से निभाने में किसी से नहीं डरते। संतोष, धैर्य, सच्चाई और धर्म पर अटल रहकर उनका शरीर सचखंड का प्रतीक बन जाता है।

वे जानने वाले होते हैं कि जिस जोत से सारा भूमण्डल प्रकाशित है वह हकीकत में सचखंड में ही जग रही है। सचखंड में ही निरंकार का वास है और वही आत्मा में परमात्मा है अर्थात् ईश्वर है अपना आप इस गूढ़ सत्य के वे पारखी होते हैं। तभी तो उनका यश और सुगंधि कुल संसार व देवलोक में फैलती है।

सम, संतोष, धैर्य, धर्म, सच्चाई का पहरेवा पहन प्रत्येक सजन को अपना शरीर सचखंड बनाना है। वे इंसान इंसानियत के गुणों से ओत-प्रोत होते हैं और उनके लिए पतिव्रत और पत्नीव्रत-धर्म निभाना सुगम होता है अर्थात् उनकी एक निगाह और एक ही दृष्टि होती है। इस प्रकार वे सच्चाई-धर्म की चाल चलते हुए अपने जन्म की बाज़ी जीत जाते हैं। उनकी धारणा में सदा अंकित रहता है 'धर्म मत हारना रे-धर्म के ऊपर तन, मन, धन सब वारना रे'' और वे इस नियम का दृढ़ता से पालन करने वाले होते हैं।

वे जानते हैं कि ईश्वर ने सच का व्यापार करने के लिए ही उन्हें भूमण्डल में भेजा है इसीलिए वे भक्ति-शक्ति-समभाव एवं समदृष्टि को धारण करके सच कमाते हैं।

सतयुगी बहुत सीधे और सज्जन, सच्चरित्र, धर्मात्मा, सत्य बोलने वाले अर्थात् सत्य कहने वाले और अपनी प्रतिज्ञा पर पक्के रहने वाले यानि सत्य और धर्म का पालन करने वाले होते हैं। सतयुग के सजन निःसंदेह, विश्वसनीय, समचित्त, सावधान, बुद्धिमान, सुंदर, विवेकशील, अच्छे चरित्र वाले और सदा आनंदित व प्रसन्न रहने वाले सदाचारी होते हैं।

अपने सत्-चित्त-आनन्द स्वरूप की पहचान उनको जना देती है कि वे आप ही सचखंडदर्शी हैं और वे आप ही ब्रह्मांडदर्शी हैं इसलिए भगवान की सर्वव्यापकता उन्हें स्पष्ट होती है और यहाँ मौत का भय भी समाप्त हो जाता है अर्थात् सजन बेखौफ़ा-बेखतरा, निडर हो जाते हैं। सच्चाई का उपदेश और धर्म की चर्चा उनका दस्तूर यानि स्वभाव बन जाता है इसलिए सतवस्तु के इंसान सत्यवादी कहलाते हैं। उनकी आराधना धर्म की साधना के लिए होती है। सतयुग में सच्चाई व धर्म के दो मन्त्रों की ही रटन होती है। अनुरागी और सत्यवादी की ही बन्दगी मंज़ूर होती है। सदैव याद रखो कि सतवस्तु जो पहचान लेता है वह खुद सत्य का वर्ताव करता है और सत्य ही उसके घर की रसम-रिवाज़ होती है। सत्य की ही निराली खुराक खा कर उसकी दृष्टि परखने वाली हो जाती है अर्थात् दिव्य-दृष्टि हो जाती है। इसलिए चाहे त्रेता में, चाहे द्वापर में, चाहे कलियुग में, जितने भी श्रेष्ठ पुरुष हुए या शास्त्र रचे गए उन सब द्वारा सजनों को सच्चाई और धर्म धारण करने का सुझाव दिया गया है। अतः हमारे लिए भी यह उचित एवं आवश्यक हो जाता है कि जिह्वा सचखंड करके अपने अंदर सच का बीज बो लें और सच के उसूलों को पकड़ कर सतवस्तु का ग्रन्थ पहचान लें तद्‌उपरांत ही जीव निष्काम रास्ते पर चल विश्राम को प्राप्त हो सकता है और इस प्रकार सच्चाई-धर्म समझ कर विचारवान बन सुपुत्र कहला सकता है। इससे गृहस्थ-आश्रम अपने आप ठीक हो जाएँगे। सब सजन सत्-सत् को प्रवान कर खुद सत्य बोलना सीखेंगे और आने वाली पीढ़ियों को भी सत-धर्म वर्तना सिखाएंगे। यहाँ आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति हो जाएगी और संकल्प का झुरना हट जाएगा अर्थात् रोना-झुखना

समाप्त हो जाएगा। कहने का तात्पर्य यह है कि संकल्प संगी हो जाएगा और संतोष-धैर्य का शृंगार जो हीरे लाल जवाहरों की वर्दी है पहनकर सुरत कंचन हो जाएगी। यहाँ जो मन-मन्दिर वही जग अन्दर का एहसास होगा और एक निगाह एक दृष्टि हो जाएगी। ध्यान दो विचार शब्द को पकड़ कर बुद्धि विवेकशील हो जाती है। इस विधि से सच अनुरूप स्वभाव ढलते ही इंसान निष्काम मार्ग पर अग्रसर हो जाता है और सतवस्तु में जो सत् का नज़ारा होता है वो उसको देख पाता है। याद रहे सतवस्तु में केवल विचार, सतज़बान, एक दृष्टि और एक अवस्था होती है।

उस युग में सेवक-स्वामी, भक्त-भगवान, गुरु-चेला आदि की प्रथा नहीं होती क्योंकि उनकी निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा सुदृढ़ होती है।

वे 'एक पुरुष सबाही नार' की वास्तविकता को जानने वाले होते हैं इसलिए हर जीव का उस एक ही सच्चे-शौह के साथ विशुद्ध प्यार होता है यानि साजन ; जिस शब्द का अर्थ है पति, परमेश्वर उस आद् शब्द के साथ सबकी सुरति जुड़ी रहती है इसलिए उनकी अक्ल सदा टिकाणे रहती है।

इसलिए सभी सजनों को सुझाव है कि असत्य को छोड़ कर सत्य को धार लो। इस हेतु जो भी शास्त्रों में लोगों के हित के लिए अनेक प्रकार के कर्त्तव्य बतलाए गए हैं और अनुचित कृत्यों का निषेध किया गया है उस अनुशासन को अपनाने पर विचार करना होगा यानि जो बातें शास्त्रों में वर्जित हैं वे निषिद्ध और त्याज्य समझी जानी चाहिएं।

सच्चाई पर स्थिर रहने वाले सजन की विशेषताएं इस प्रकार हैं:-

इसीलिए तो कहते हैं :-

शब्दः- एहो दृढ़ विश्वास है, एहो तो इतिहास है,
एहो तो याददाश्त है,
उस शहनशाह दाते दी एहो तो करामात है।
सत् सत् बोलना सीखो, सजनों सत् सत् करो प्रवान,
सत् है गुरु, सत् नाम सत् ध्यान लाणा सीखो,
सजनों सत् सत् बड़ा है महान।।
सत् सत् वर्त वर्ताओ करना सीखो,
सजनो सत् सत् करो प्रवान।
सत् सत् बोलना सीखो सजनों सत् आप पढ़ो ते सजनां नूं पढ़ाओ,
इसे शब्द नाल हिवे विश्राम।।

सतयुग में धर्म

सतयुग के सजन धर्मपरायण होते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि धर्म किसी वस्तु या व्यक्ति की वह वृत्ति है जो उसमें सदा रहे उससे कभी अलग न हो। धर्म वह कर्म या कृत्य है जो पारलौकिक सुख की प्राप्ति के अर्थ किया जाए। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि किसी निर्देशित कर्म का विधिपूर्वक नियमानुसार करना ही धर्म है। सुख, शांति और पवित्रता का जीवन व्यतीत करने के लिए धर्मपरायण बने रहना आवश्यक है। सतयुग को धर्मयुग भी कहते हैं क्योंकि सतयुग के सजन धर्ममय अर्थात् धर्म से परिपूर्ण पुण्यात्मा अपने आप में धर्म का प्रमाण होते हैं। उनका चित्त वैराग्य के अभ्यास से सब वृत्तियों से रहित हो जाता है। वे धर्म-बुद्धि वाले अर्थात् धर्म-अधर्म, भले-बुरे का विचार करने वाले धर्मशील होते हैं।

उनकी धर्म में आस्था, श्रद्धा, भक्ति और प्रवृत्ति होती है और उनके अंदर धर्म-बल महान होता है। वे धर्म की पालना या रक्षा करने वाले तथा धर्म के कामों का यथाशक्ति अनुष्ठान करने वाले होते हैं। वे धर्म पर अधिकार रखने वाले होते हैं तथा धर्म मार्ग पर चल कर अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं। वे धर्म की पालना करते हुए धर्म का ही उपदेश करने वाले होते हैं या हम कह सकते हैं कि वे धर्म का मर्म जानने वाले धर्मज्ञ, श्रेष्ठ तथा धर्मवीर होते हैं। धर्म से उत्पन्न होने वाला सुख प्राप्त कर उनका आचरण व भावना धर्मानुसार होती है। वे धर्म का तत्व खुद समझते हैं और दूसरों को भी समझा सकते हैं । उनका व्यवहार सदा धर्म अनुरूप ही होता है और अपने धर्म को सुरक्षित रखने हेतु वे सजन अपना तन, मन, धन वारने से भी नहीं सकुचाते। इसलिए वे सभी विचारक और न्यायकर्त्ता होते हैं और धर्मार्थ यानि पुण्य के विचार से परोपकार के लिए सदा तत्पर रहते हैं। अंततः हम कह सकते हैं कि सतयुग में सुकर्मों का राज होता है और धर्मरक्षक सजन निरंतर सुख, शांति, एकता और पवित्रता का जीवन व्यतीत करते हैं। जहाँ विष्णु धर्म का रक्षण और पालन करने वाले हैं वहाँ भारतवर्ष को धर्म के संचय के लिए कर्म-भूमि माना गया है। त्रेता से लेकर कलियुग के अंतिम चरण तक सजनों के आचार, विचार, व्यवहार से धर्म छूटने की क्रिया मानव जाति के पतन का कारण बनती है इसीलिए इन युगों में परोपकार आदि के लिए धर्मनिष्ठ सजनों को कई प्रकार की हानि या कठिनाई सहनी पड़ती है। धर्म जो सतयुग में चार पादों पर स्थिर अर्थात् समरूप बना रहता है, वह त्रेता, द्वापर और कलियुग में क्रमशः तीन, दो व एक पाद पर हो जाता है। इस प्रकार अधिकतर सजन धर्म से पतित अर्थात् धर्मभ्रष्ट हो धार्मिक आचरण के विपरीत अनैतिक स्वभाव वाले यानि नीति के विरुद्ध चलने वाले स्वार्थी हो जाते हैं। वे अपने प्रति, परिवार व समाज के प्रति किसी कर्त्तव्य का पालन करने में सक्षम नहीं हो पाते हैं। अपने हर कार्य को सिद्ध करने के लिए वे कुछ भी अनिष्ट करने से नहीं सकुचाते। कुकर्म और अधर्म करने लगते हैं और इस प्रकार संतोष, धैर्य और सच्चाई भी उनकी पकड़ से छूट जाती है। सृष्टि को सच्चाई-धर्म के मार्ग पर स्थिरता से अग्रसर करने हेतु सतयुग में शंख, चक्र, गदा, पदम्धारी श्री विष्णु भगवान प्रगटते हैं और **सजन श्री शहनशाह हनुमान जी** समभाव-समदृष्टि की युवावस्था की भक्ति पर ठहरा सजन-भाव, निष्काम-भाव द्वारा परोपकार करने हेतु उच्च बुद्धि, उच्च ख्याल, भक्ति प्रबल और शक्ति ताकतवर का संचार करते हैं।

इस प्रकार मानव जाति फिर से सच्चरित्र, धर्म-परायण बनती है और हर व्यक्ति अपना, परिवार व कुल समाज का सजन बन जाता है। इस प्रकार फिर से सतयुगी संविधान व साम्राज्य की स्थापना होती है और हर सजन को धर्म-रक्षा हेतु प्रेरित कर धर्म-परायण बनने और बने रहने की युक्ति यानि समभाव-समदृष्टि का प्रयोग करने में पारंगत बनाया जाता है। धीरे-धीरे फिर से धर्म चार पादों पर स्थिर हो जाता है। **सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ** के अनुसार धर्म का रास्ता महान है इसलिए यह ग्रन्थ हर सजन को सम, संतोष, धैर्य, धर्म, सच्चाई विशाल पकड़ने का सुझाव देता है।

यही सतवस्तु का चलन है। ध्यान से सुनो, आज आवश्यकता है धर्म को पहचान कर धारण करने की और खुद वर्त-वर्ताव करते हुए आगे भावी पीढ़ियों तक धर्म का उपदेश पहुँचाने की। खुद धर्म परायण बने रह भावी पीढ़ियों के लिए कीर्तिमान स्थापित करने की क्योंकि धर्म

हारने का अर्थ है उपाधि खरीद करना। इस सत्य का बोध कराते हुए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ जनाता है कि सतवस्तु में संकल्प नहीं होता लेकिन त्रेते में स्वभावों में तबदीली होने के कारण संकल्प पैदा हो जाता है तो उसके साथ-साथ झुखना शुरू और रोना उग पड़ता है। द्वापर युग में स्वभावों में तबदीली होने के कारण संकल्प बढ़ना शुरू हो जाता है इसीलिए झुखना अधिक होता है और रोना बढ़ जाता है। सजन कलुकाल के युग में संकल्प बिल्कुल बढ़ जाता है और झुखना ही झुखना व रोना ही रोना हद से ज्यादा हो जाता है।

अब कलुकाल के बाद चौरासी के अन्त में सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की समभाव-समदृष्टि की सौखी युक्ति के वर्त-वर्ताव से झुखना हट जाएगा और रोना बन्द हो जाएगा। युग-युग में रोना बढ़ता है, सतवस्तु में रोना मिटता है। रोना कैसे मिटता है, सजनों सुनो, विचार, सतज़बान, एक दृष्टि, एकता और एक अवस्था।

इसलिए **सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ** सच्चाई और धर्म में स्थिर रह उत्तम-पुरुष बनने, सच्चाई-धर्म से ही प्यार करने व सच्चाई-धर्म का ही व्यापार करने का उपदेश देता है क्योंकि सच्चाई और धर्म ही हमारे लिए हितकारी तथा सच्चे साथी हैं।

धर्मज्ञ की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं:-

इसीलिए तो कहते हैं ---

धर्म मत हारना रे, धर्म के ऊपर सजनों तन, मन, धन सब वारना रे।

सतयुग में संतोष

सतयुग में प्रत्येक सजन संतोषी होता है। वह जानता है कि संतोष मन की वह वृत्ति या अवस्था है जिसमें मनुष्य अपनी वर्तमान दशा में ही पूर्ण सुख का अनुभव करता है। उसे न तो किसी बात की कामना होती है और न ही शिकायत। वह हर हालत में प्रसन्न रहते हुए साग को भी कड़ाह समझता है। ऐसे परिवार कभी भी उजड़ते नहीं, सदा ही बसे रहते हैं।

वे जानते हैं कि संतोष की उत्पत्ति सात्विक वृत्ति से होती है और इसके पैदा हो जाने पर मनुष्य को अनंत और अखंड सुख मिलता है। वे यह भी जानते हैं कि धर्म अनुसार आचरण से सदा प्रसन्न रहना और दुःख में भी आतुर न होना संतोष कहलाता है। वे जानते हैं कि संतोषी ही अमीरों का भी अमीर होता है इसीलिए उनके लिए रत्नों की खान भी धूल के समान होती है। संतोष ही उनका वास्तविक धन होता है इसलिए संतोषी ही सबसे धनवान होता है।

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी वर्णन है कि संतोष रखने वाला धैर्य, विचार अर्थात् विवेक शक्ति जैसे गुणों का प्रयोग कर वैराग्य अवस्था को प्राप्त होता है। संतोष मन की वह अवस्था है जो किसी कामना या आवश्यकता की भली-भांति पूर्ति होने पर होती है।

संतोष प्रसन्नता, सुख, हर्ष, तृप्ति, शांति और आनन्द का प्रतीक है जो मन से शत्रुता भाव को जड़ से उखाड़ फेंकता है इसीलिए यह कथन सत्य माना जाता है कि जो सदा संतोष रखता है केवल वही संतोषी कहलाता है।

याद रहे संतोषी को कभी भी किसी बात की चिंता, अपेक्षा, परवाह या शिकायत नहीं होती क्योंकि वह सदा संतुष्ट रहता है। यहाँ यह प्रमाणित हो जाता है कि संतोष मनुष्य के मूल आवश्यक गुण समभाव-समदृष्टि को न केवल उन्नत करता है वरन् श्रृंगारता भी है। जिससे प्राणी की प्रकृति सदा समान बनी रहती है अर्थात् विकृत नहीं होती। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि प्रकृति की विकृति ही जगत है और प्राणी का जगत के दृश्यों के साथ जुड़ना ही विकारों का बीजारोपण कहलाता है। फलस्वरूप सब कुछ मिलने के उपरांत भी उसका मन नहीं भरता और वह सदा अधीर, अतृप्त व अप्रसन्न रहता है।

यहाँ यह याद रखना आवश्यक है कि मनुष्य के अंदर मनुष्यता का भाव विकसित करने एवं उस भाव को स्थिर करने के लिए संतोष अपने आप में परिपूर्ण है क्योंकि संतोष द्वारा ही मनुष्य के अंदर सजन-भाव, दया-भाव, चित्त की कोमलता, धीरता, शीलता, सभ्यता, शिष्टता, व्यवहार ज्ञान आदि सद्गुणों का उद्‌भव होता है अर्थात् संतोषी सजनता का प्रतीक बन जाता है।

संतोषी का संकल्प सजन हो जाने से दृष्टि अपने आप ठीक हो जाती है तदुपरांत उसका संतोष का सवाल हल हो जाता है। इसीलिए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ सजनों को संदेश दे रहा है कि संकल्प को सजन बनाओ और संतोष पर फ़तह पाओ।

ध्यान दो संतोषी ही अपनी प्रालब्ध को स्वीकारने की हिम्मत जुटा पाता है और अपनी हैसियत अनुसार विचरने में ही गर्व महसूस करता है। वह जो भी कपड़ा पहनता है अपनी हैसियत अनुसार साफ़-सुथरा और उजला पहनता है। अपनी हैसियत के अनुसार खुराक भी खाता है ताकि उसकी सेहत ठीक रहे क्योंकि वह जानता है कि सेहत के बिना भजन-बन्दगी नहीं हो सकती। इसीलिए सभी सजनों के लिए जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में संतोष करना, मानना, रखना और होना आवश्यक है।

अंततः हम कह सकते हैं कि संतोष वह अलौकिक, अपूर्व, असाधारण और दिव्य गुण है जिसे केवल तत्वज्ञानी अर्थात् जिसे ब्रह्म, सृष्टि और आत्मा आदि के सम्बन्ध का ज्ञान हो, वह ही धारण कर सकता है।

संतोषी की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं :-

इस प्रकार सतयुग के सजन जानते हैं कि संतोषी उत्तम भाग्य वाला होता है क्योंकि वह सदा सुकर्म ही करता है और केवल संतोषी ही धैर्य अपना सकता है।

इसीलिए तो कहते हैं:-

सुख-शांति के लिए हमें एक होके रहना होगा।
संतोष धैर्य का शृंगार पहन कर,
हमें सच्चाई-धर्म की राह पर चलना होगा।
बैख़ौफ़ा-बेख़तरा हो करके,
हमें इस जगत में भी विचरना होगा।।

एक ही है राह हमारी,
एक ही है धर्म हमारा।
एक ही है राह हमारी,
एक ही है धर्म हमारा।।

क्या

निष्कामता - निष्कामता- निष्कामता,
जो हम सबको लगे प्यारा।
हम इन्सानों को,
इंसानियत अनुरूप ढलना होगा।।
ढलना होगा, ढलना होगा,
समभाव और सजन-भाव,
पकड़ना होगा पकड़ना होगा,
पकड़ना होगा, पकड़ना होगा।।

सतयुग में धैर्य

सतयुग में प्रत्येक सजन धैर्यवान होता है। धैर्य अर्थात् धीर होने का भाव। संकट, बाधा, कठिनाई या विपत्ति आदि आने पर वे घबराते नहीं और न ही उनके चित्त में उद्वेग, हड़बड़ाहट या उतावलापन उत्पन्न होता है। उनके चित्त की निर्विकार स्थिरता या मन की दृढ़ता धैर्य दर्शाती है। वे जानते हैं कि धैर्य बुद्धिमता व गंभीरता का प्रतीक है। जो शांत और सौम्य है वही अच्छे स्वभाव वाला, नम्र, सुशील, प्रसन्नचित्त व प्रफुल्लित रह सकता है। इसीलिए उन स्थिर बुद्धि वालों का स्वभाव सजनता से ओत-प्रोत होता है यानि उनमें सजन-भाव को वर्त-वर्ताव में लाने की योग्यता होती है। वे यह भी जानते हैं कि धीरता बलवान, मनोहर और सुन्दर होने का गुण है इसीलिए वे जीवन की विभिन्न परिस्थितयों में धीरज धर खुद ही अपनी संतान का आदर्श बनते हैं।

वे जानते हैं कि गंभीर व्यक्ति का मन निश्चल होता है और वह दृढ़ संकल्पी ही अपने सिद्धांतों पर स्थिर रहने वाला प्रगाढ़ वृत्ति वाला होता है इसीलिए उन्हें अपने धर्म व कर्म में धैर्य से काम करते हुए संतुष्टि प्राप्त होती है। वे जानते हैं कि धैर्यवान दृढ़ विचार और पक्के इरादे वाला अर्थात् मज़बूत धुरी वाला होता है। धैर्यवान ही अपनी प्रतिज्ञा को दृढ़ता से निभा सकता है।

उनका मन इधर-उधर नहीं भटकता और संसार की विषय वासना उन्हें तुच्छ प्रतीत होती है। इस प्रकार उन्हें चित्त को एकाग्र करके ईश्वर में लीन करने का विधान समझ में आ जाता है जिससे उनका उग्र भाव नष्ट हो जाता है। वे जानते हैं कि धैर्य के बिना कोई भी पराक्रमी, शूरवीर, निर्भय, सहनशील, निश्चल, निष्ठावान, गंभीर, क्षमावान, आत्मज्ञानी, तेजस्वी, शुद्ध स्वभाव वाला, प्रसन्नचित्त और आत्मसंयमी, विरक्त अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिए जीवन-लक्ष्य प्राप्ति हेतु वे संतोष और धैर्य द्वारा अपने प्रति, परिवार व समाज के प्रति कर्त्तव्य पालन की महत्ता को समझते हैं। वे जानते हैं कि संतोष की भांति धैर्य भी मनुष्य के मूल आवश्यक गुण समभाव-समदृष्टि को शृंगारते हुए और निखारता है तथा वर्त-वर्ताव में लाने का बुद्धि-बल अर्थात् विचारशक्ति प्रदान करता है। वे धीरमति अपनी सोचने-समझने की शक्ति के बल पर बुद्धिमान, न्यायवान, उदार, दयावान, गुणवान तथा पुण्यवान यानि सबकी भलाई करने वाले परोपकारी और साहसी होते हैं। आगे सुनो, वे यह भी जानते हैं कि धैर्य, बुद्धि को स्थिरता प्रदान करता है जिससे संकल्प कुसंगी सजन और संगी बन जाता है। धैर्यवान कभी भी उत्तेजित नहीं होता, सदा स्थिर रहता है इसलिए पवित्र या शुद्ध आचार-विचार से रहने के लिए धैर्य की आवश्यकता होती है। पौरुष द्वारा ही मनुष्य की पूरी ऊँचाई यानि सामर्थ्य का पता चलता है और मनुष्य केवल धैर्य द्वारा ही इस बल को प्राप्त कर सामर्थ्यवान हो सकता है। याद रहे धैर्य धारण करने वाला यानि सब्र करने वाला ही संतोषी कहलाता है। धैर्यवान ही अपनी विचारशक्ति से अपने असली रूप में स्थिर रह सकता है।

इस प्रकार सतयुग के सज्जन भलीभाँति जानते हैं कि सच्चाई-धर्म की राह पर चलने हेतु संतोष और धैर्य दोनों वृत्तियों का निरंतर समरूप रहना अति आवश्यक है। इससे उनके स्वभावों का टैम्परेचर घटता-बढ़ता नहीं और उनके लिए सच्चाई-धर्म की राह पर चलना सरल हो जाता है। धैर्यवान की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं :-

अन्ततः अपने उद्धार के लिए व अपने परिवार की सुख-शांति के लिए आवश्यक है कि परस्पर वैर-विरोध व शत्रुता को छोड़कर आत्मसंयम को अपनाओ। आप सब स्वीकारेंगे कि समाज के उत्थान के लिए व जीवन के परम उद्देश्य को पाने के लिए हम सबको एकता में रहना होगा और एक भाव अपनाना होगा तभी हम आपसी सामंजस्य और सुख-शांति से जीवन यापन कर सकेंगे।

आओ इस हेतु संकल्प लें कि संतोष व धैर्य जैसे महान सद्गुण दृढ़ता से अपनाकर हमें सच्चाई और धर्म की राह पर आगे ही आगे बढ़ना है ताकि जीव इसी जीवन काल में अपने असली घर-परमधाम पहुँच सके।

समभाव दी होसवे फ़तह

अधिक जानकारी के लिए, संपर्क करें
सतयुग दर्शन ट्रस्ट (रजि.)
'वसुंधरा', ग्राम भोपानी, लालपुर रोड, फरीदाबाद – 121002 (हरियाणा)
दूरभाषः 0129 2202316/820/821 Ext. 504/510
मोबाइलः 09811016239, 09811066127
इमेलः info@satyugdarshantrust.org वेबसाइटः www.satyugdarshantrust.org
© Satyug Darshan Trust (Regd.)

उपरोक्त लेख टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली के विशेष परिशिष्ट 'द स्पीकिंग ट्री' में दि.11 जूलाई 2010 को पृष्ठ 3 में प्रकाशित लेख का हिन्दी भाषान्तर है।